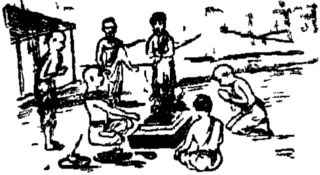
* ओ३म् *

ोपवीत संस्कार

तथा

वेदारम्भ संस्कार

(एक दिन में)



संग्रह कर्त्ता

म० रामनारायण जी, वैदिक धर्म भूषण

प्रथम संस्करण

मूल्य ला

वैदिक संस्क पीछे

ब्रह्म कैवल्य सत्ता का, महत्ता में समाता है।

यज्ञोपवीत संस्कार

प्राचीन ऋषियों ने जहाँ समाजिक सुव्यवस्था के लिए वर्ण-व्यवस्था प्रचलित की थी, वहाँ शारीरिक शुद्धीकरण के लिए उन्होंने सोलह संस्कारों की भी व्यवस्था की थी। उन सोलह संस्कारों में पैदा होने से मृत्यु होने तक सभी आवश्यक तथा परिवर्तनशील अवस्थाएँ आगई हैं। उपनयन भी उनमें से एक संस्कार है। इसे हम वेदारंभ या विद्यारंभ संस्कार भी कह सकते हैं।

वैदिक युग में हमारी शिक्षा का प्रमुख अंग वेद थे। प्रत्येक द्विज का यह कर्तव्य समझा जाता था कि वह वेदाध्ययन करे। इसका परिणाम यह था कि भारत समूचे विश्व में शिरमौर गिना जाता था। विज्ञान, कला, आध्यात्मिक विद्या, किसी भी दृष्टि से देख लीजिए सभी में उन्नति के शिखर पर था। अपनी वैज्ञानिक उन्नति पर अभिमान करने वाला पश्चिम अभी तक उस प्राचीन पूरब से बहुत पीछे है। यह सब वेदों की शिक्षा का प्रताप था।

वेदों को समझना और उसकी तह तक पहुँच कर मोती निकाल लाना कोई हँसी खेल नहीं था। यह प्रतिभावान् व्यक्तियों का ही कार्य था। इसलिए गुरुजन वेदों की शिक्षा के उम्मेदवारों की भली प्रकार जाँच कर लिया करते थे कि अमुक विद्यार्थी इस योग्य है या नहीं। क्योंकि कुपात्र के साथ बेकार की माथापच्ची के लिए समय उन ऋषियों के पास कहाँ था। इस आँच में जो उम्मेदवार उनकी कसौटी पर खरे उतरते थे वही वैदिक शिक्षा के अधिकारी समझे जाते थे और सार्टीफिकेट के रूप में कहिए या किसी और रूप में, उनको यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण कराया जाता था। जिन विद्यार्थियों के पास यज्ञोपवीत (जनेऊ) होता था वही वेदाध्ययन कर सकते थे।

आज कल शिक्षा का रूप बिलकुल परिवर्त्तित है। ज्ञान-विज्ञान का तो प्रश्न ही नहीं है, केवल अक्षर-ज्ञान को ही हम शिक्षा समझते हैं और उसका अधिकारी स्कूल आज कल तो वही है जिसके पास

में देने के लिए भरपूर फ़ीस है और ट्यूशन कराने के लिए रुपया है; अतः ऐसे वातावरण में यज्ञोपवीत (जनेऊ) की उपयोगिता ही क्या हो सकती है। फलतः इसका प्रभाव हमारे हृदय से बिलकुल उठ-सा गया है। अब तो यह कुछ दकियानूसी व्यक्तियों में केवल ब्राह्मणत्व या द्विजत्व का चिह्नमात्र ही रह गया है। किंतु इसका परिणाम भी यही हुआ है जो होना चाहिए। हम अज्ञानांधकार में भटकते फिरते हैं और विश्व रंग मंच पर असभ्य, मूर्ख, अपढ़ और न जाने क्या क्या समझे जाते हैं।

यदि वास्तव में हम अपने प्राचीन स्वप्नों को साक्षात देखना चाहते हैं, यदि हम संसार में स्वतंत्र रहना चाहते हैं, यदि हम चाहते हैं कि संसार में हमें वही गौरवशाली पद प्राप्त हो जो वैदिक काल में था तो हमें फिर उसी वेद की शिक्षा का पुनर्निर्माण करना पड़ेगा और उसके लिए यज्ञोपवीत संस्कार को फिर वही महत्त्व देना पड़ेगा जो हम पहले देते थे, हमें इस झूठे जन्म के ब्राह्मणत्व को मिटाकर सच्चे

और गुण, कर्म, स्वभाव के वेदार्थी ब्राह्मण कुमारों को खोजना पड़ेगा और वैदिक शिक्षा देनी होगी। हमें उसी प्राचीन प्रणाली का मान करना होगा और गुरुकुलों की प्रथा चालू करनी होगी ! वरना तो हम सदियों से मूर्ख और गुलाम कहाये जा रहे हैं और ऐसे ही कहाते रहेंगे। इसमें किसी का चारा क्या है !

इस पुस्तक के छापने का कारण

इसको विशेषता यह है कि प्रत्येक कृत को अलग अलग छाँट दिया गया है और जो मन्त्र जहाँ बोलना चाहिये वहाँ पर ही अर्थात् संस्कार विधि में से लिख (छाप) दिया है इससे उन कराने वालों को जो अधिक जानकार नहीं हैं संस्कार करने में सहूलियत मिलती है। यह संस्कार ऋषि दयानन्दजी की संस्कार विधि से लिखा है।

सामान

यज्ञोपवीत (जनेऊ) चन्दन, समिधा, सामिग्री घृत कपूर, भात धोती लंगोट अंगोछा १ थाली दण्ड खड़ाऊँ सन (सूतली) आसन मेखला द्विपट्टा केसर।

अथोपनयन * संस्कारविधिं वक्ष्यामः

अत्र प्रमाणानि—अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् ॥ १ ॥ गर्भाष्टमे वा ॥ २ ॥ एकादशे क्षत्रियम् ॥ ३ ॥ द्वादशे वैश्यम् ॥ ४ ॥ आषोडशाद् ब्राह्मणस्यानतीतः कालः ॥५॥ आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ॥६॥

अर्थः—जिस दिन जन्म हुआ हो अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो उस से ८ (आठवें) वर्ष में ब्राह्मण के, जन्म वा गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय के और जन्म वा गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य के बालक का यज्ञोपवीत करें, तथा ब्राह्मण के १६ (सोलह) क्षत्रिय के २२ (बाईस) और वैश्य के बालक को २४ (चौबीस)

---

* उप नाम समीप नयन अर्थात् प्राप्त करना व होना ।

सेपूर्व २ यज्ञोपवीत चाहिये यदि पूर्वोक्त काल में इनका यज्ञोपवीत न हो तो वे पतित माने जावें ॥

श्लोकः—ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे। राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ १ ॥

यह मनुस्मृति का वचन है कि जिसको शीघ्र विद्या बल और व्यवहार करने की इच्छा हो और बालक भी पढ़ने में समर्थ हुए हों तो ब्राह्मण के लड़के का जन्म वा गर्भ से पाँचवें क्षत्रिय के लड़के का जन्म वा गर्भ से छठे और वैश्य के लड़के का जन्म वा गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करें परन्तु यह बात तब सम्भव है कि जब बालक की माता और पिता का विवाह पूर्ण ब्रह्मचर्य के पश्चात् हुआ होवे, उन्हीं के ऐसे उत्तम बालक श्रेष्ठबुद्धि और शीघ्र समर्थ बढ़नेवाले होते हैं जब बालक का शरीर और बुद्धि ऐसी हो कि अब यह पढ़ने के योग्य हुआ, तभी यज्ञोपवीत करा देवें—

यज्ञोपवीत का समय—उत्तरायण सूर्य और—

वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत् । ग्रीष्मे राजन्यम् । शरदि वैश्यम् । सर्वकालमेके ॥

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है ।

अर्थः—ब्राह्मण का वसन्त, क्षत्रिय का ग्रीष्म और वैश्य का शरद्ऋतु में यज्ञोपवीत करें अथवा सब ऋतुओं में उपनयन हो सकता है इसका प्रातः काल ही समय है

पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः ॥

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है ॥

जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करना हो उससे तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व तीन वा एक व्रत बालक को कराना चाहिये उन व्रतों में ब्राह्मण का लड़का एकबार वा अनेकवार दुग्धपान, क्षत्रिय का लड़का (यवागू) अर्थात् यव को मोटा दल के गुड़ के साथ पतली जैसी कि कढ़ी होती है वैसे बना

पिलावें और (अमिक्षा) अर्थात् जिसको श्रीखण्ड वा सिखण्ड कहते हैं वैसी जो दही चौगुना दूध एकगुना तथा यथायोग्य खाँड केशर डाल के कपड़े में छानकर बनाया जाता है उसको वैश्य का लड़का पी के व्रत करे अर्थात् जब जब लड़कों को भूख लगे तब २ तीनों वर्णों के लड़के इन तीनों पदार्थों ही का सेवन करें अन्य पदार्थ कुछ न खावें पीयें ॥

विधिः—अब जिस दिन उपनयन करना हो उसके पूर्व दिन में सब सामग्री इकट्ठी कर याथातथ्य शोधन आदि कर लेवे और उस दिन कुण्ड के समीप सब सामग्री धर प्रातः काल बालक का क्षौर करा करा शुद्ध जल से स्नान करा के उत्तम वस्त्र पहिना यज्ञमण्डप में पिता वा आचार्य बालक को मिष्टान्नादि का भोजन कराके वेदी के पश्चिम भाग में सुन्दर आसन पर पूर्वाभिमुख बैठावे और बालक का पिता 'ओ३म् आवसोः सदने सीद' कहे और ऋत्विज् लोग भी 'सीदामि' कहें अपने अपने आसन पर बैठ पिता संकल्प बोले ।

संकल्प

ओ३म् तत्सदद्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे प्रथमदिने द्वितीयप्रहरार्धे श्रीवैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथमचरणे··· वर्षेषु गतेषु(जंबुद्वीपे) भारतवर्षान्तर्गतेपुण्यभूमा-वार्यावर्ते···स्थाने···मिते वैक्रमाब्दे···मिते जन्म, मरण श्री मद्दयानन्दाब्दे · अयने·· ऋतौ··· मासे·· पक्षे शुभ तिथौ·· वासरे·· मंडला-न्तर्गते···ग्रामवास्तव्य···गोत्रोत्पन्नो···नामाहं उपनयन संस्कार कृत्यं करिष्ये तदर्थं 'भवन्तं वृणे' और ऋत्विज 'वृतोस्मि' कह कर बैठे और तब आचमन आदि करे।

आचमन मन्त्र।

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा

ओं वाङ्मआस्येऽस्तु ॥१॥

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥२॥

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥३॥

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥४॥

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥५॥

ओं ऊर्वोर्मेऽओजोऽस्तु ॥६॥

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥७॥पारस्कर गृ० कां० ३। सू०२५

पश्चात् कार्य्यकर्त्ता बालक के मुख से:—

ब्रह्मचर्यमागाम् ब्रह्मचार्यसानि ॥ पार० कां० २ । कं० २ ॥

ये वचन बुलवा के * आचार्य्य:—

ओं येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यद-धादमृतम् । तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घा-युत्वाय बलाय वर्चसे ॥ १ ॥ पार० कां०-१ । कं० २ ॥

इस मन्त्र को बोल के बालक को सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र पहिनावे पश्चात् बालक आचार्य्य के सम्मुख बैठे और यज्ञोपवीत हाथ में लेके—

---

* आचार्य्य उसको कहते हैं कि जो साङ्गोपाङ्ग वेदों के शब्द अर्थ सम्बन्धी और क्रिया का जाननेहारा छल कपट रहित अतिप्रेम से सब को विद्या का दाता, परोपकारी, तन मन और धन से सब को शुद्ध बढ़ाने में जो तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी किसी का न करे और सत्योपदेष्टा सबका हितैषी धर्मात्मा जितेन्द्रिय होवे ।

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापते-र्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रति-मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥१॥ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनो-पनह्यामि ॥ २ ॥ पार० कां० २ ॥

इन मन्त्रों को बोल के आचार्य्य बायें स्कन्धे के ऊपर कण्ठ के पास शिर बीच में निकाल दाहिने हाथ के नीचे बगल में निकाल कटि तक धारण करावे तत्पश्चात् बालक को अपने दाहिने ओर साथ बैठा के

ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना मन्त्राः ।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥१॥ यजु० अ० ३० । मं० ३॥

ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥ यजु० अ० १३ मं० ४ ।

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छाया-ऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥ यजु० अ० २५ मं० १३।

ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥ यजु० अ० २३ मं० ३।

ओ३म् येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥५॥ यजु० अ० ३२ मं० ६।

ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते

शुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥ ऋ० मं० १० सू० १२१ मं० १०

ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवानानि विश्वा । यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥७ यजु० अ० ३२ मं० १० ।

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्य-स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥ यजु० अ० ४० मं० १६ ।

अथ स्वस्तिवाचनम्

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥१॥

(पुरोहितम) पूर्व से ही जगत् को धारण करने वाले (यज्ञस्य) हवन, विद्यादि दान और शिल्प किया के (देवम्) प्रकाशक (ऋत्विजम्) प्रत्येक ऋतु में पूजनीय (होतारम) जगत् के सुन्दर पदार्थों को देनेवाले (रत्नधातमम्) रमणीय रत्नादिकों के पोषण करनेवाले (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप परमात्मा की (ईळे) मैं उपासक स्तुति करता हूँ [भौतिक अग्नि पर कभी इस मन्त्र का अर्थ होता है पर यहाँ यही ग्राह्य है] ॥१॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥२॥ ऋ० मं० १ सू० १ म० १ ।

(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (सः) लोक वेद प्रसिद्ध आप (सूनवे पिता, इव) पुत्र के लिए पिता जैसे, (नः) हमारे लिए (सूपायनो भव) सुख के हेतु पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले हूजिए। और (नः) हम लोगों का (स्वस्तये) कल्याण के लिए (सचस्व) मेल कराए ॥२॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः। स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचेतुना ॥३॥

हे ईश्वर ! (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण को (मिमी-ताम्) करें (भगः) ऐश्वर्य रूप आप, वा वायु (स्वस्ति) सुख का सम्पादन करें (अदितिः) अखण्डित (देवी) प्रकाश वाली विद्युत् विद्या

(अनर्वाणः) ऐश्वर्य रहित रोगों के लिये कल्याण करे। (पूषा) पुष्टिकारक (असुरः) प्राणों का देने वाला मेघादि (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) देवे। (द्यावापृथिवी) अन्तरिक्ष और पृथिवी (सुचेतुना) अच्छे विज्ञान से युक्त हुए (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याणकारी हों ॥३॥

स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः। बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥

हे परमेश्वर! (स्वस्तये) शान्ति के लिये हम (वायुम्) वायु विद्या को (उप, ब्रवामहै) कहें वा उपदेश करें और (सोमम्) शान्त्यादि ऐश्वर्य देने वाले चन्द्रमा की भी हम स्तुति करते हैं (यः) जो चन्द्रमा ओषध्यादि रस का उत्पादक होने से (भुवनस्य) संसार की। पतिः रक्षा करने वाला है। (बृहस्पतिम्) बड़े कर्मों के रक्षक (सवगणम्)

सम्पूर्ण समूह वाले आपका (स्वस्तये) कल्याण के लिये आश्रयण करते हैं (आदित्यासः) ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले ब्रह्मचारी, आप की कृपा से (नः) हम लोगों के बीच (स्वस्तये भवन्तु) कल्याणार्थ उत्पन्न हों ॥४॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये । देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥५॥

हे परमात्मन् ! (अद्य) आज यज्ञ के दिन (नः) मारे (स्वस्तये) आनन्द के लिये (विश्वे देवाः) सब विद्वान् लोग हों । और (वैश्वानरः) सब मनुष्यों के काम में आने वाला और सर्वत्र बसने वाला (अग्निः) अग्नि (स्वस्तये) मङ्गल के लिये हो । (ऋभवः) विशिष्ट मेधावी (देवाः) विद्वान् लोग (अवन्तु) हमारी रक्षा करें और (नः) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिये ही (रुद्रः) दुष्टों का

हलाने वाले आप (अंहसः) पापरूप अपराध से (स्वस्ति, पातु) शान्तिपूर्वक हमारी रक्षा करो ॥५॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति । स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥

हे (अदिते) अखण्डितविद्य ! परमेश्वर ! (नः) हमारे लिये स्वस्ति कल्याण (कृधि) करो । (च) और (इन्द्रः) वायु (च) और (अग्नि) विद्युत (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण करे । (पथ्ये, रेवति) शुभ धनादि सम्पन्न मार्ग में हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण हो । और (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याणकारी हों ॥६॥

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसा-विव । पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमेमहि ॥७॥ ऋ० मण्ड० ५ । सू० ५१ । मं० १५ ॥

हे ईश्वर ! (पन्थाम्) मार्ग में (स्वस्ति) आनन्द से (अनुचरेम) हम लोग विचरें । (सूर्याचन्द्रमसाविव) जैसे सूर्य और चन्द्र विना किसी उपद्रव के विचरण करते हैं (पुनः) फिर (ददता) सहायता देने वाले (अघ्नता) किसी को दुःख न देने वाले (जानता) ज्ञान सम्पन्न समझदार बन्धु आदि के साथ (संगमेमहि) हम मेल करें ॥७॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः । ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥ ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० १५ ॥

(ये) जो (यज्ञियानां, देवानाम)यज्ञ के योग्य विद्वानों के बीच में (यज्ञियाः) यज्ञोपयोगी हैं और (मनोर्यजत्राः) मननशील पुरुषों के साथ संगति करने वाले (अमृताः) जीवन्मुक्त जैसे (ऋतज्ञाः)

सत्यज्ञानी हैं (ते) वे आप लोग (अद्य) आज यागादिन में (उरु गायम्) बहुत कीर्ति वाले विद्या-बोध को (नः) हमारे लिए (रासन्ताम्) देवें और (यूयम्) तुम सब (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी पदार्थों से (सदा) सब काल में (नः) हमारी (पात) रक्षा किया करो ॥८॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः । उक्थशुष्मान्वृषभ-रान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥९॥

(येभ्यः) जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिए (माता) सब की निर्माण करने वाली पृथिवी (मधुमत्, पयः) माधुर्ययुक्त दुग्धादि पदार्थों को (पिन्वते) देती हैं और (अदितिः) अखण्डनीय (अद्रिबर्हाः) मेघों से बढ़ा हुआ (द्यौः) अन्तरिक्ष लोक (पीयूषम्) सुन्दर जलादि को देता है, उन

(उक्थशुष्मान्) अत्यन्त बलवाले (वृषभरान्) यज्ञ द्वारा वृष्टि का आहरण करने वाले (स्वप्नसः) शोभन कर्म वाले (तान्, आदित्यान्) उन आदित्य ब्रह्मचारियों को (स्वस्तये) उपद्रव न होने के लिये (अनुमद) प्राप्त कराइये ॥६॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः । ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥१०॥

(नृचक्षसः) कर्मकारी मनुष्यों के द्रष्टा (अनिमिषन्तः) आलस्य रहित (अर्हणाः) लोगों के पूजनीय (देवासः) विद्वान् लोग हैं जो कि (बृहत्) बड़े (अमृतत्वम्) अमरण धर्म को (आनशुः) प्राप्त हो चुके हैं अर्थात् जीवन्मुक्त हैं और (ज्योतीरथाः) सुन्दर प्रकाशमय रथों से युक्त हैं (अहिमायाः) जिन की बुद्धि को कोई दबा नहीं सकता ऐसे

(अनागसः) पापरहित वे आदित्य ब्रह्मचारी जो कि (दिवः) अन्तरिक्ष लोक के (वर्षमाणम्) ऊँचे देश को (वसते) ज्ञानादि द्वारा व्याप्त करते हैं, वे (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये हों ॥१०॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् । तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये-॥११॥

(सम्राजः) अपने तेजों से अच्छे प्रकार विराजमान (सुवृधः) ज्ञानादि से वृद्ध (ये, देवाः) जो विद्वान् लोग (यज्ञम्) यज्ञ को (आययुः) प्राप्त होते हैं और जो (अपरिह्वृताः) किसी से भी अपीड़ित देवता लोग (दिवि) द्युलोकवर्ती बड़े २ स्थानों में (क्षयम्) निवास को (दधिरे) करते हैं (तान्) उन (महो, आदित्यान्) गुणों से अधिक आदित्य ब्रह्मचारियों को और (अदितिम्) अखण्डनीय आत्मविद्या को (नमसा) हव्यान्न के साथ और सुवृक्तिभिः) अच्छी

स्तुतियों के साथ (स्वस्तये) कल्याण के लिये (आ, विवास) सेवन कराओ ॥११॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन। को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२॥

यह ईश्वर का उपदेश है—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वानो ! (यम् जुजोषथ) जिस स्तुतिसमूह का तुम सेवन करते हो उस (स्तोमम्) सामवेदोक्त स्तुतिसमूह को (वः) तुम लोगों के बीच में (कः) कौन (राधति) बनाता है ! और हे (तुविजाताः) अनेक प्रकार के जन्म वाले (मनुषः) मननशील विद्वान् लोगों (यति, स्थन) जितने तुम हो उन (वः) तुम सब के बीच में (कः) कौन (अध्वरम्) यज्ञ को (अरम्, करत्) अलंकृत करता है ? (यः) जो यज्ञ (नः) हमारे (अहः) पाप को (अति)

हटाकर (स्वस्तये) कल्याण के लिये (पर्षत्) पालन करता है (इसका विचार करो) ॥१२॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः। त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त्त सुपथा स्वस्तये ॥१३॥

(येभ्यः) जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिये (समिधाग्निः) अग्निहोत्री (मनुः) मननशील विद्वान् (मनसा) मन से (सप्तहोतृभिः) सात होताओं से (प्रथमाम्) मुख्य (होत्राम्) यज्ञ को (आयेजे) करता है अर्थात् जिन के लिये विद्वान् लोग बड़े बड़े यज्ञों द्वारा सम्मान करते हैं (ते, आदित्याः) वे आदित्य ब्रह्मचारी (अभयं, शर्म) भय रहित सुख को (यच्छत) देवें और (नः) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सुगा) अच्छे प्रकार प्राप्तव्य

सुपथा) शोभन वैदिक मार्गों को (कर्त) करें ॥१३॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः । ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥

(ये, देवासः) जो विद्वान् लोग (प्रचेतसः) अच्छे ज्ञान वाले (मन्तवः) सब के जानने वाले (स्थातुः) स्थावर (च) और (जगतः) जङ्गम (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) लोक के (ईशिरे) मालिक बनते हैं (ते) वे (अद्य) आज (स्वस्तये) कल्याण के लिये (कृतात्) किये हुए और (अकृतात्) नहीं किये हुए (एनसः) पाप से (परि, पिपृत) पार करें ॥ १४ ॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् । अग्निं मित्रं वरुणं

सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥

हे ईश्वर ! (अंहोमुचम्) पाप के हटाने वाले (सुहवम्) जिसका बुलाना अच्छा हो ऐसे (इन्द्रम्) शक्तिशाली विद्वान् को (भरेषु) संग्रामों में (हवामहे) अपनी रक्षा के लिये बुलावें और (सुकृतम्) श्रेष्ठ कर्मवाले (दैव्यं) आस्तिक (जनम्) पुरुष को बुलावें और (सातये) अन्नादि लाभ के लिये (स्वस्तये) अनुपद्रव के लिये (अग्निम्) अग्नि विद्या को (मित्रम्) प्राणविद्या को (भगम्, वरुणम्) सेवनीय जलविद्या को और (द्यावापृथिवी) अन्तरिक्ष और पृथिवी की विद्या को (मरुतः) वायुविद्या को (हम सेवन करें) ॥ १५ ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माण-मदितिं सुप्रणीतिम् । दैवीं नावं स्वरित्राम-नागसमस्रवन्तीमारुहेम स्वस्तये ॥१६॥

(सुत्रामाणम्) अच्छे प्रकार रक्षा करने वाली (पृथिवीम्) लम्बी चौड़ी (अनेहसम्) उपद्रवरहित (सुशर्माणम्) अच्छा सुख देने वाली (अदितिम्) जो टूट न सके (सुप्रणीतिम्) जो अच्छे प्रकार बनाई गई है (द्याम्) अन्तरिक्षलोकस्थ (स्वरित्राम्) सुन्दर यन्त्रों से युक्त (अस्रवन्तीम्) दृढ़ (दैवीम्, नावम्) विद्युत्सम्बन्धी नौका के ऊपर अर्थात् विमान के ऊपर हम लोग (स्वस्तये) सुख के लिये (आरुहेम) चढ़ें ॥ १६ ॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिहुतः । सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥१७॥

हे (विश्वे, यजत्राः) पूजनीय विद्वानो ! (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (अधि वोचत) आप उपदेश किया करें और (अभिहुतः) पीड़ा देने वाली

(दुरेवायाः) दुर्गति से (नः) हमारी (त्रायध्वम्) रक्षा करो (देवाः) हे विद्वान् लोगो ! (शृण्वतः) हमारी स्तुति सुनने वाले आप को (सत्यया) सच्ची, (वः) तुम्हारी (देवहूत्या) देवताओं के योग्य स्तुति से हम (अवसे) शत्रुओं से रक्षा करने के लिये और (स्वस्तये) सुख के लिये (हुवेम) बुलाया करें ॥१७॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः। आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८॥

हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (अमीवाम्) रोगादि को (अप) पृथक् करो। (विश्वाम्) सब (अनाहुतिम्) मनुष्यों की देवताओं के न बुलाने की बुद्धि को (अप) पृथक् करो (अरातिम्) लोभबुद्धि को (अप) पृथक् करो। (अघायतः) पाप की इच्छा करने वाले शत्रु की (दुर्विदत्राम्) दुष्ट बुद्धि को दूर करो। (द्वेषः) द्वेष करने वाले सबों को (अस्मत्) हम से

(आरे) दूर (युयोतन) पृथक् करो। (नः) हमारे लिए (उरु-शर्म) बहुत सुख (स्वस्तये) कल्याण के लिये (यच्छत) देओ ॥ १८ ॥

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजा-भिर्जायते धर्मणस्परि। यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१९॥

हे (आदित्यासः) आदित्य ब्रह्मचारियो ! (यम) जिन पुरुषों को (सुनीतिभिः) अच्छी नीतियों से (विश्वानि, दुरिता) सब पापों को (अति) उल्लङ्घन करके (नयथ) सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हो (सः, विश्वः, मर्तः) वे सब पुरुष (अरिष्टः) किसी से पीड़ित न होकर (एधते) बढ़ते हैं और (धर्मणः) धर्मानुष्ठान के (परि) बाद (प्रजाभिः) पुत्रपौत्रादिकों से(प्र, जाय) ते अच्छी तरह प्रकट होते हैं ॥१६॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हि ते धने। प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥२०॥

हे (मरुतो, देवासः) मितभाषी देवता—विद्वान् लोगो ! (वाजसातौ) अन्न के लाभ के लये (यं, रथम्) जिस रमणीय गमन साधन—वाष्पयानादि की (अवथ) रक्षा करते हो और (हिते, धने) रक्खे हुए धन के कारण (शूरसाता) संग्राम में जिस रथ की रक्षा करते हो (इन्द्रसानसिम्) बड़े यन्त्रकला के विद्वानों से भी सेवनीय (प्रातर्यावाणम्) प्रातःकाल से ही गमन करने वाले उसी रथ पर हम (स्वस्तये) कल्याण के लिये (आरुहेम) चढ़ें ॥ २० ॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति। स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२१॥

(मरुतः) मितभाषी विद्वान् लोगो ! (नः) हमारे लिये (पथ्यासु) मार्ग के योग्य अर्थात् जलसहित देश में (स्वस्ति) कल्याण करो और (धन्वसु) जलरहित देशों में (स्वस्ति) जल की उत्पत्तिरूप कल्याण कर और (अप्सु) जलों में कल्याण करो और (स्वर्वति) सब आयुधों से युक्त (वृजने) शत्रुओं को दबाने वाली सेना में (स्वस्ति) कल्याण करो और (नः) हमारे (पुत्रकृथेषु) पुत्रों के करने वाले (योनिषु) उत्पत्तिस्थानों में (स्वस्ति) कल्याण करो और (राये) गवादि धन के लिये कल्याण को (दधातन) धारण करो ॥२१॥

स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वस्त्यभि या वाममेति । सा नो अमासो अरणे निपातु स्वावेषा भवतु देवगोपाः ॥२२॥
ऋ० मं० १० । सू० ६३ ॥

(या) जो पृथिवी, जाने वालों के (प्रपथे) अच्छे मार्ग के लिये (स्वस्तिः, इत्, हि) कल्याणकारिणी ही होती है और जो (श्रेष्ठः) अति सुन्दर (रेक्णस्वती) धन वाली है तथा (वामम्) सेवन के योग्य यज्ञ को (अभि, एति) प्राप्त होती है (सा) वह पृथिवी (नः) हमारे (अमा) गृह को (नि, पातु) रक्षा करे (सा, उ) वही पृथिवी (अरणे) वनादि देशों में हमारी रक्षिका हो और (देवगोपा) विद्वान् लोग जिसके रक्षक हैं ऐसी वह पृथिवी हमारे लिये (स्वावेशा) अच्छे स्थान वाली (भवतु) हो। [परमात्मा से प्रार्थना है कि हमारे लिये सुन्दर मार्ग वाली, अन्नादि धन पैदा करने वाली, वनादि में जिसका सुप्रबन्ध हो ऐसी और विद्वानों (इंजिनियरों) से जिस में अच्छे-स्थान बनाये जावें ऐसी पृथिवी प्राप्त हो] ॥२२॥

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा

अयक्ष्मा मा वस्ते न ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२३॥ यजु० अ० १ । मं० १ ॥

हे ईश्वर! (इषे) अन्नादि इष्ट पदार्थ के लिये (त्वा) तुमको, (आश्रयामइति शेषः)आश्रयण करते हैं और (ऊर्जे) बलादि के लिये (त्वा) तुम को आश्रयण करते हैं।

हे वत्स जीवो! तुम (वायवः) वायु सदृश पराक्रम करने वाले (स्थ) हो। (सविता देवाः) सब जगत् का उत्पादक देव (श्रेष्ठतमाय, कर्मणे) यज्ञरूप श्रेष्ठ कर्म के लिये (वः) तुम सबों को (प्रार्पयतु) सम्बद्ध करे। उस यज्ञद्वारा (इन्द्राय भागम्) अपने ऐश्वर्य भाग को (आप्यायध्वम्) बढ़ाओ। यज्ञसंपादन के लिये (अघ्न्याः) न मारने योग्य (प्रजावतीः) बछड़ों सहित (अनमीवाः) व्याधिविशेषों से रहित अयक्ष्माः) यक्ष्म—तपेदिक़ आदि बड़ेरोग से शून्य

(गौएँ सम्पादन करो) (वः) तुम लोगों के बीच जो (स्तेनः) चौर्यादि दुष्ट गुणयुक्त हो, वह उन गौओं का (मा, ईशत) मालिक न बने और (अघ शंसः) अन्य पापी भी (मा) उन का रक्षक न बने। ऐसा यत्न करो जिस से (बह्वीः, ध्रुवाः) बहुत सी चिरकालपर्यन्त रहने वाली गौएँ (अस्मिन्नोपतौ) निर्दुष्ट गोरक्षक के पास (स्यात्) बनी रहें। और परमात्मा से प्रार्थना करो कि (यजमानस्य) यज्ञ करने वाले के पशुओं की हे ईश्वर ! तू (पाहि) रक्षा कर। इस मन्त्र में कई वाक्य हैं, कोई वाक्य जीवमुखोपदेशपरक है और कोई ईश्वरमुखोपदेशपरक, यह बात यथायोग्य रीति से जान लेनी चाहिए। वाक्य सम्पत्ति के लिये उचित अध्याहार भी करना पड़ा है। अर्थान्तर भी पूर्वाचार्यों ने किये हैं, परन्तु हमें यह सर्वोत्तम मालूम होता है ।।२३।।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो

यथा सदमिद् वृधे असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥२४॥

हे ईश्वर ! (नः) हम को (भद्रः) स्तुति के योग्य (क्रतवः) संकल्प (आ, यान्तु) प्राप्त हों (विश्वतः) सब ओर से (अदब्धासः) किसी से अविध्नित (अपरीतासः) सर्वोत्तम (उद्भिदः) दुःखनाशक (देवाः) विद्वान् लोग (यथा) जैसे (नः) हमारी (सदम्) सभा में वा सर्वदा (वृधे, एव) वृद्धि के लिये ही (असन्) हों, वैसे ही (दिवे दिवे) प्रति दिन (अप्रायुवो रक्षितारः) प्रमादशून्य रक्षा करने वाले बनाओ ॥२४॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳫं रातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानाᳫं सख्य-मुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२५॥

हे भगवन् ! (ऋजूयताम्) सरलतया आचरण करने वाले (देवानाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याण करने वाली (सुमतिः) अच्छी बुद्धि (नः) हम को (अभि-निवर्त्तताम्) प्राप्त हो और (देवानां, रातिः) विद्वानों का विद्यादि पदार्थों का दान [प्राप्त हो] । (देवानाम्) देवों-विद्वानों के (सख्यम्) मित्रभाव को (वयम्) हम (उपसेदिम) प्राप्त हों । जिससे कि वे (देवाः) देवता लोग (नः) हमारी (आयुः) अवस्था को (जीवसे) दीर्घकाल पर्यन्त जीने के लिये (प्र तिरन्तु) बढ़ावें ॥२५॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिंधियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६॥

(वयम्) हम लोग (ईशानम्) ऐश्वर्य वाले (जगतस्तस्थुषस्पतिं) चर और अचर जगत् के पति

(धियंजिन्वम्) बुद्धि से प्रसन्न करने वाले परमात्मा की (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (हूमहे) स्तुति करते हैं (यथा) जैसे कि यह (पूषा) पुष्टिकर्ता (वेदसाम्) धनों की (वृधे) वृद्धि के लिए (असत) हो, (रक्षिता) सामान्यतया रक्षक और (पायुः) विशेषतया रक्षक (अदब्धः) कार्यों का साधक परमात्मा (स्वस्तये) कल्याण के लिए हो (वैसे ही हम स्तुति करते हैं) ॥२६॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७॥

(वृद्धश्रवाः) बहुत कीर्ति वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) स्थापन करे। और (पूषा) पुष्टि करने वाला (विश्ववेदाः) सर्वज्ञाता ईश्वर (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण का धारण करे

तार्क्ष्यः) तीक्ष्ण तेजस्वी (अरिष्टनेमिः) दुःखहर्ता ईश्वर (नः) हमको (स्वस्ति) कल्याण करे । (बृहस्पतिः) बड़े २ पदार्थों का पति (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण को (धारण करे) ॥२७॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२८॥ यजु० अ० २५ । मं० । १४ । १५ । १८ । १९ । २१ ॥

हे (यजत्राः) संग करने योग्य (देवाः) विद्वान् लोगो! हम (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) अनुकूल ही (शृणुयाम) सुनें (स्थिरैरङ्गैः) दृढ़ अङ्गों से (तुष्टुवांसः) आप की स्तुति करने वाले हम लोग (तनूभिः) शरीरों से या भार्यादि के साथ (देवहितम्) विद्वानों के लिये कल्याणकारी (यद्, आयुः) जो

आयु है उस को (व्यशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥२८॥

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १॥

हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (वीतये) कान्ति-तेजोविशेष के लिए (गृणानः) प्रशंसित हुए आप (हव्यदातये) देवताओं के लिए हव्य देने को (आयाहि) प्राप्त हूजिए (होता) सब पदार्थों के ग्रहण करने वाले आप (बर्हिषि) यज्ञादि शुभकार्यों में स्मरणादिद्वारा हमारे हृदयों में (नि, सत्सि) स्थित हूजिए। (भौतिकाग्निपरक भी इस का व्याख्यान होता है) ॥२९॥

त्वमग्ने यज्ञानाᳫं होता विश्वेषाᳫंहितः देवेभिर्मानुषे जने ॥३०॥ सा० छन्द आ० प्रपा० १ । मं० १ । २ ॥

हे (अग्ने) पूजनीयश्वर ! (त्वं) तू (विश्वेषां, यज्ञानाम्) छोटे बड़े सब यज्ञों का (होता) उपदेष्टा

है। (देवेभिः) विद्वान् लोगों से (मानुषे, जने) विचारशील पुरुषों में भक्त्युत्पादन द्वारा, तुम (हितः स्थित किये जाते हो ॥३०॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१॥ अथर्व० कां० १ । अनु० १ । सू० १ । मं० १ ॥

(त्रिषप्ताः) तीन-रजस्, तमस् और सत्त्वगुण, तथा सात-ग्रह; अथवा तीन-सात अर्थात् ५ महाभूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ प्राण, ५ कर्मेन्द्रिय, १ अन्तःकरण (ये) जो (विश्वा, रूपाणि) सब चराचरात्मक वस्तुओं को (बिभ्रतः) अभिमत फल देकर पोषण करते हुए (परि, यन्ति) यथोचित लौट पौट होते रहते हैं (तेषाम्) उनके सम्बन्धी (मे, तन्वः) मेरे शरीर में (बला) बलों को (अद्य) आज (वाचस्पतिः) वेदात्मकवाणी का पति परमेश्वर (दधातु) करे ॥३१॥

अथ शान्तिप्रकरणम्

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ ॥१॥

(इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि (अवेभिः) रक्षणादिद्वारा (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (भवताम्) हों । (रातहव्या) ग्रहण योग्य वस्तु जिन्होंने दी है ऐसे (इन्द्रावरुणा) बिजली और जल (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक हों । (इन्द्रासोमा) विद्युत् और ओषधिगण (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये और (शंयोः) शान्तिहेतुक और विषयहेतुक सुख के लिये (शम्) प्रसन्नतादायक हों । (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और वायु (नः) हमारे लिये (वाजसातौ) युद्ध में वा अन्न लाभ विषय में (शम्) कल्याणकारक हों ॥१॥

शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धि शमु सन्तु रायः । शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥

(नः) हमारे लिए (भगः) ऐश्वर्य (शम्) सुखदायक हो और (नः) हमारे लिये (शंसः) प्रशंसा (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (अस्तु) हो। हमारे लिये (पुरन्धिः) बहुत बुद्धि (शम्) सुखकारक हो (रायः) धन (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (सन्तु) हों। (सुयमस्य) अच्छे नियम से युक्त (सत्यस्य) सत्य का (शंसः) कथन (नः) हमको (शम्) सुखकारक हो। (नः) हमारे लिये (पुरुजातः) बहुत पुरुषों में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायाधीश (शम्) सुख देने वाला (अस्तु) हो ॥२॥

शन्नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शन्न उरूची भवतु स्वधाभिः । शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥

(नः) हम को (धाता) पोषक सब वस्तु (शम्) शान्तिकारक हो (धर्त्ता) धारक सब वस्तु (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (नः) हमारे लिये (अस्तु) हो। (नः) हमारे लिये ही (उरूची) पृथिवी (स्वधाभिः) अन्नादि पदार्थों से (शम्) कल्याणकारक (भवतु) हो। (बृहती) बड़ी (रोदसी) अन्तरिक्ष सहित पृथिवी, वा प्रकाश सहित अन्तरिक्ष (शम्) शान्ति देने वाली हो। (अद्रिः) मेघ (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक हों और (नः) हमारे लिये (देवानाम्) विद्वानों के (सुहवानि) शोभन आह्वान (शम्) सुखकारक (सन्तु) हों ॥३॥

शन्नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शन्नो मित्रावरुणावश्विना शम्। शन्नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शन्न इषिरो अभिवातु वातः ॥४॥

(ज्योतिरनीकः) प्रकाश ही है अनीक मुख वा सेना की नाईं जिसका ऐसा (अग्निः) अग्नि (नः) हमको (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो। (मित्रावरुणौ) प्राण और उदानवायु (नः) हमको (शम्) सुखकारक हों (अश्विना) उपदेशक और अध्यापक (शम्) सुख देने वाले (सन्तु) हों। (नः) हमारे लिये (इषिरः) गमनशील (वातः) वायु (शम्) सुख देता हुआ (अभि, वातु) बहे ॥४॥

शन्नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु। शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥

(द्यावापृथिवी) विद्युत् और भूमि (पूर्वहूतौ) पूर्व पुरुषों की प्रशंसा जिस में हो ऐसी क्रिया में

(नः) हमारे लिए (शम्) शान्तिदायक हों। (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षलोक (इशये) ज्ञान सम्पत्ति के लिए (नः) हमारे लिए (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो। (ओषधीः) ओषधियाँ और (वनिनः) वृक्ष (शम्) सुखकारक (नः) हमारे लिए (भवन्तु) हों (रजसस्पतिः) रजोलोक का पति (जिष्णुः) जयशील महापुरुष (नः) हमारे लिए (शम्) सुख देने वाला (अस्तु) हो ॥५॥

शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभि र्वरुणः सुशंसः। शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

(देवः) दिव्य गुणयुक्त (इन्द्रः) सूर्य (वसुभिः) धनादि पदार्थों के साथ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो (आदित्येभिः) संवत्सरीय मासों के साथ (सुशंसः) शोभन प्रशंसा वाला (वरुणः) जलसमुदाय (शम्) सुखकारक हो।

(जलाषः) शान्तस्वरूप (रुद्रः) परमात्मा (रुद्रेभिः) दुष्टों को दण्ड देने वाले अपने गुणों के साथ (नः) हमारे लिए (शम्) सुख देने वाला हो। (त्वष्टा) विवेचक विद्वान् (ग्नाभिः) वाणियों से [ग्नेतिवाङ् नाम निघण्टौ १। ११] (इह) इस संसार में (शम्) सुखमय उपदेशों को (नः) हमारे लिए श्रृणोतु) सुनावे [अन्तर्भावितण्यर्थः] ॥६॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः। शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

(नः) हमारे लिए (सोमः) चन्द्रमा (शम्) सुखकारक (भवतु) हो। (नः) हमारे लिए (ब्रह्म) अन्नादि रूप तत्त्व (शम्) शान्तिदायक हो (ग्रावाणः) शुभ कार्यों के साधनभूत प्रस्तर-पत्थर (नः) हम को (शम्) सुख देने वाले हों। (यज्ञाः) सब

प्रकार के यज्ञ (शम्, उ) शान्ति ही के लिए (सन्तु) हों। (स्वरूणाम्) यज्ञस्तम्भों के (मितयः) परिमाण (नः) हमको (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों। (नः) हम को (प्रस्वः) ओषधियाँ (शम्) सुख देने वाली हों। (वेदिः) यज्ञ की वेदि कुण्डा-दिक (शम, उ) शान्ति ही के लिए (अस्तु) हो ॥७॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

(उरुचक्षाः) बहुत तेज हैं जिस के ऐसा (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिए (शम्) सुखपूर्वक (उद्, एतु) उदय को प्राप्त हो। (चतस्त्रः) चारों (प्रदिशः) पूर्वादि बड़ी दिशाएँ या ऐशानी आदि प्रदिशाएँ (नः) हमारे लिए (शम्) सुख करने वाली (भवन्तु) हों। (पर्वताः) पर्वत (ध्रुवयः) स्थिर

और (शम्) सुखकारक (नः) हमारे लिए (भवन्तु) हों। और (नः) हमारे लिए (सिन्धवः) नदियाँ वा समुद्र (शम्) शान्तिदायक हों (आपः) जलमात्र वा प्राण (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (सन्तु) हों ॥८॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

(व्रतेभिः) सत्कर्मों के साथ (अदितिः) विदुषी माताएं (नः) हमारे लिए (शम्) शान्ति के लिए (भवतु) हों। (स्वर्काः) शोभन विचार वाले (मरुतः) मितभाषी विद्वान् लोग (नः) हमारे लिए (शम्) शान्ति के लिए (भवन्तु) हों। (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (नः) हम को (शम्) शान्त्याधायक हों। (पूषा) पुष्टिकारक ब्रह्मचर्यादि व्यवहार (नः) हम को (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (अस्तु) हो।

(भवित्रम्) अन्तरिक्ष, वा जल, वा भवितव्य (नः) हम को (शम्) सुखकारक हों। (वायुः) पवन (शम्, उ) शान्ति ही के लिए (अस्तु) हो ॥ ९ ॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः । शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०॥

(सविता) सर्वोत्पादक (देवः) परमेश्वर (त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (नः) हमारे लिए (शम्) सुख कारक हों। (उषसः) प्रभातवेलाएं (विभातीः) विशेष दीप्ति-वाली (नः) हमारे लिए (शम्) सुख-कारक (भवन्तु) हों। (पर्जन्यः) मेघ (नः) हम को और (प्रजाभ्यः) संसार के लिये (शम्, भवतु) कल्याणकारी हो (क्षेत्रस्य) जगत्रूपी क्षेत्र का (पतिः) स्वामी (शम्भुः) सबको सुख देने वाला (नः) हमारे लिए (शम्) शान्तिकारी (अस्तु) हो ॥ १० ॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु । शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शन्नो अप्याः ॥११॥

(देवाः) दिव्यगुणयुक्त (विश्वदेवाः) समस्त विद्वान् (नः) हमारे लिए (शम् भवन्तु) सुख देने वाले हों । (सरस्वती) विद्या सुशिक्षायुक्त वाणी (धीभिः) उत्तमबुद्धियों के (सह) साथ (शम् अस्तु) सुखकारिणी हो । (अभिषाचः) यज्ञ के सेवक वा आत्मदर्शी (शम्) शान्तिदायक हों (रातिषाचः) विद्याधनादि के दान का सेवन करने वाले (शम्, उ) शान्ति ही के लिए हों । (दिव्याः) सुन्दर (पार्थिवाः) पृथिवी के पदार्थ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखद हों । (अप्याः) जल में पैदा होने वाले (नः) हमारे लिए (शम्) सुखद हों ॥ ११ ॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः । शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥

(सत्यस्य, पतयः) सत्यभाषणादि व्यवहार के पालक (नः) हमारे लिए (शम्, भवन्तु) सुखकारी हों (अर्वन्तः) उत्तम घोड़े (नः) हमको (शम्) सुखद हों। (गावः) गौएं (शम्, उ) शान्ति ही के लिए (सन्तु) हों। (ऋभवः) श्रेष्ठ बुद्धि वाले (सुकृतः) धर्मात्मा (सुहस्ताः) अच्छे कामों में हाथ देने वाले (नः) हमारे लिए (शम्) सुखद हों। (हवेषु) हवनादि सत्कर्मों में (पितरः) माता पिता आदि (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक (भवन्तु) हों ॥१२॥

शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः । शं नो अपां-

नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥१३॥ ऋ० मं० ७ । सू० ३५ । मं० १-१३ ।

(एकपात्) जगत्रूप पाद वाला अर्थात् जिस के अंश में सब जगत् है वह अनन्तस्वरूप (अजः) अजन्मा (देवः) ईश्वर (नः) हमारे (शम्) कल्याण के लिए (अस्तु) हो । (बुध्न्यः, अहिः) अन्तरिक्ष में पैदा होने वाला मेघ (नः) हमारे (शम्) कल्याण के लिये हो । (समुद्रः) सागर (शम्) सुखकारी हो । (अपाम्) जलों की (नपात्) नौका (नः) हमको (शम्, पेरुः) सुखपूर्वक पार लगाने वाली (अस्तु) हो । (देवगोपाः) देव रक्षक है जिस में ऐसा (पृश्निः) अन्तरिक्षस्थल (नः) हमको (शम्, भवतु) सुखकारक हो ॥१३॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१४॥

हे जगदीश्वर ! जो आप (इन्द्रः) बिजली के तुल्य (विश्वस्य) संसार के बीच (राजति) प्रकाशमान हैं, उन आप की कृपा से (नः) हमारे (द्विपदे) पुत्रादि के लिए (शम्) सुख (अस्तु) होवे और हमारे (चतुष्पदे) गौ आदि के लिए (शम्) सुख होवे ॥१४॥

शन्नो वातः पवताᳬं शं नस्तपतु सूर्य्यः । शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥१५॥

हे परमेश्वर ! (वातः) पवन (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी (पवताम्) चले (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी (तपतु) तपे । (कनिक्रदद्) अत्यन्त शब्द करता हुआ (देवः) उत्तमगुणयुक्त विद्युत्‌रूप अग्नि (नः) हमारे लिए (शम्) कल्याणकारी हो और (पर्जन्यः) मेघ, हमरे लिए (अभि, वर्षतु) भली प्रकार वर्षा करे ॥१५॥

अहानि शं भवन्तु नः शᳫँ रात्रीः प्रतिधीयताम्। शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शं न इन्द्रा-पूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा सोमा सुविताय शंयोः ॥१६॥

हे परमेश्वर! (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (शंयोः) सुख की (सुविताय) प्रेरणा के लिए (नः) हमारे अर्थ (अहानि) दिन (शम्) सुखकारी (भवन्तु) हों (रात्रीः) रातें (शम्) कल्याण के (प्रति) प्रति (धीयताम्) हमको धारण करें (इन्द्राग्नी) बिजली और प्रत्यक्ष अग्नि (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी (भवताम्) होवें (रातहव्या) ग्रहण करने योग्य सुख जिनसे प्राप्त हुआ वे (इन्द्रावरुणा) विद्युत् और जल (नः)

हमारे लिए (शम्) सुखकारी हों (वाजसातौ) अन्नों के सेवन के हेतु संग्राम में (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और पृथ्वी (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारी हों (इन्द्रा सोमा) बिजली और ओषधियाँ (शम्) सुखकारिणी हों ॥१६॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥१७॥

हे जगदीश्वर ! (अभिष्टये) इष्ट सुख की सिद्धि के लिए (पीतये) पीने के अर्थ (देवीः) दिव्य उत्तम (आपः) जल (नः) हमको (शम्) सुखकारी (भवन्तु) होवें और वे (नः) हमारे लिए (शंयोः) सुख की वृष्टि (अभिस्रवन्तु) सब ओर से करें ॥१७॥

द्यौःशान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।

वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥१८॥

हे परमेश्वर ! (द्यौः) प्रकाशयुक्त सूर्यादि (अन्तरिक्षम्) सूर्य और पृथ्वी के बीच का लोक (पृथ्वी) भूमि (आपः) जल (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियाँ (वनस्पतयः) वनस्पति वट आदि वृक्ष (विश्वे देवाः) सब विद्वान् लोग (ब्रह्म) वेद (सर्वम्) सब वस्तु (शान्तिः) शान्ति सुखकारी निरुपद्रव हों। शान्ति शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ मन्त्र में अन्वय है (शान्तिरेव शान्तिः) स्वयं शान्ति भी सुखदायिनी हो और (सा) वह (शान्तिः) शान्ति (मा) मुझको (एधि) हो वा प्राप्त हो ॥१८॥

**तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ**

शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥१९॥ यजु० अ० ३६। मं० ८। १०। ११। १२। १७। २४।

हे सूर्यवत् प्रकाशक परमेश्वर ! आप (देवहितम्) विद्वानों के हितकारी (शुक्रम्) शुद्ध (चक्षुः) नेत्र तुल्य सबके दिखाने वाले (पुरस्तात्) अनादिकाल से (उत्, चरत्) अच्छी तरह सब के ज्ञाता हैं (तत्) उस आपको हम (शतं शरदः) सौ वर्ष तक (पश्येम) ज्ञान द्वारा देखें और आपकी कृपा से (शतं शरदः) सौ वर्ष तक (जीवेम) हम जीवें (शतं शरदः) सौ वर्ष तक (शृणुयाम) सच्छास्त्रों को सुनें (शतं शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (प्रब्रवाम) पढ़ावें वा उपदेश करें और (शतं शरदः) सौ वर्ष तक (अदीनाः) दीनता रहित (स्याम) हों (च)

और (शतात् शरदः) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक भी देखें, जीवें, सुनें और अदीन रहें ॥१९॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२०॥

हे जगदीश्वर ! आप की कृपा से (यत्) जो (दैवम्) दिव्य गुणों से युक्त (दूरंगमम्) दूर दूर जाने वाला वा पदार्थों को ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) विषयों के प्रकाशक चक्षुरादि इन्द्रियों का (ज्योतिः) प्रकाश करने वाला (एकम्) अकेला (जाग्रतः) जागने वाले के (दूरम्) दूर दूर (उत एति) अधिकतया भागता है (उ) और (तत्) वह (सुप्तस्य) सोते हुए को (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) प्राप्त होता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) अच्छे अच्छे विचार वाला (अस्तु) हो ॥२०॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२१॥

हे जगत्पते ! (येन) जिस मनसे (अपसः) सत्कर्मनिष्ठ (मनीषिणः) मन को दमन करने वाले (धीरः) ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग (यज्ञे) अग्निहोत्रादि धार्मिक कार्यों में और (विदथेषु) वैज्ञानिक और युद्धादि व्यवहारों में (कर्माणि) इष्टकर्मों को (कृण्वन्ति) करते हैं। और (यत्) जो (अपूर्वम्) अद्भुत (प्रजानाम्) प्राणिमात्र के (अन्तः) भीतर (यक्षम्) मिला हुआ है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) श्रेष्ठ सङ्कल्प वाला (अस्तु) हो ॥२१॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्चन

कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२२॥

हे प्रभो ! (यत्) जो (प्रज्ञानम्) बुद्धि का उत्पादक (उत) और (चेतः) स्मृति का साधन (धृतिः) धैर्यस्वरूप (च) और (प्रजासु) मनुष्यों के (अन्तः) भीतर (अमृतम्) नाशरहित (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप है (यस्मात्) जिस के (ऋते) बिना (किम् चन) कोई भी (कर्म) काम (न, क्रियते) नहीं किया जाता (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) (शिवसङ्कल्पम्) शुद्ध विचार वाला (अस्तु) हो॥२२

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतम् मृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२३॥

हे सर्वेश्वर ! (येन, अमृतेन) जिस नाशरहित मन से (भूतं, भुवनं, भविष्यत् सर्वमिदं परिगृहीतम्)

भूत, वर्तमान्, भविष्यत् सब यह जाना जाता है और (येन) जिस से (सप्तहोता) जिसमें सात होता हों ऐसा (यज्ञः) अग्निष्टोमादि यज्ञ [अग्निष्टोम में सात होता बैठते हैं] (तायते) विस्तृत किया जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव-सङ्कल्पम्) मुक्ति आदि शुभ पदार्थों के विचार वाला (अस्तु) हो ॥२३॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२४॥

हे अखिलोत्पादक ! (यस्मिन्) जिस शुद्ध मन में (ऋचः, साम) ऋग्वेद और सामवेद तथा (यस्मिन) जिसमें (यजूꣳषि) यजुर्वेद और अथर्व-

वेद भी (रथनाभाविवाराः) रथ की नाभि-पहिये के बीच के काष्ठ में अरा जैसे (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं और (यस्मिन्) (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान सम्बद्ध है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रचार रूप सङ्कल्प वाला (अस्तु) हो ॥२४॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२५॥

यजु० अ० ३४ । मं० १-६ ॥

(यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों को (सुषारथिः, अश्वानिव) अच्छा सारथि घोड़ों को जैसे (नेनीयते) अतिशय करके (इधर उधर) ले जाता है और जो मन, अच्छा सारथि (अभीशुभिः)

रस्सियों से (वाजिनइव) वेग वाले घोड़ों को जैसे (यमयतीतिशेषः) मनुष्यों को नियम में रखता है और (यत्) जो (हृत् प्रतिष्ठम्) हृदय में स्थित है (अजिरम्) जरा रहित है (जविष्ठम्) अतिशय गमनशील है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) शुद्ध सङ्कल्प वाला (अस्तु) हो ॥२४॥

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते शं राजन्नोषधीभ्यः ॥२६॥ साम० उत्तरार्चिके० प्रपा० । मं० ३ ॥

हे (राजन्) सर्वत्र प्रकाशमान परमात्मन् ! (सः) प्रसिद्ध आप (नः) हमारे (गवे) गवादि दूध देने वाले पशुओं के लिए (शम्) सुखकारक हों। (जनाय) मनुष्यमात्र के लिए (शम्) शान्ति देने वाले हों। (अर्वते) घोड़े आदि सवारी के काम में आने वाले पशुओं के लिए (शम्) सुखकारक

हों। (ओषधीभ्यः) गेहूँ आदि ओषधियों के लिए हमें (शम्, पवस्व) शान्ति दीजिए ॥२६॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरा-दधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥

हे भगवन्! (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षलोक (नः) हमारे लिए (अभयम्) निर्भयता को (करति) करे (उभे, इमे) ये दोनों (द्यावापृथिवी) विद्युत् और पृथिवी (अभयम्) निर्भयता करें। (पश्चात्) पीछे से (अभयम्) भय न हो। (पुरस्तात्) आगे से (अभयम्) भय न हो (उत्तरात्, अधरात्) ऊँचे नीचे से (नः) हमको (अभयम्, अस्तु) भय न हो ॥२७॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञाता-दभयं पुरोयः। अभयं नक्तमभयं दिवा नः

सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८॥ अथर्व० का० १६ सू० १५ । मं० ५ । ६ ॥

हे जगत्पते ! हमें (मित्रात्) मित्र से (अभयम्) भय न हो । (अमित्रात्) शत्रु से (अभयम्) भय न हो । (ज्ञातात्) जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो । (परोक्षात्) न जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो । (नः) हमें (नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) भय न हो । (दिवा) दिन में (अभयम्) भय न हो । (सर्वाः) सब (आशाः) दिशाएं (मम, मित्रम्) मेरी मित्र (भवन्तु) हों ।

॥ इति शान्तिप्रकरणम् ॥

ओं भूर्भुवः स्वः ॥ गोभिला० गृ० प्र० १। खं० १ सू० ११ ॥

नीचे के मन्त्र से अग्नि या जलते कपूर को कुण्ड में रक्खें

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ यजुर्वेद अ० ३ मं० ५। नीचे के मन्त्र से अग्नि रक्खी हो तो पंखा करे—

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सᳪं सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत यजुर्वेद अध्याय १५। मन्त्र ५४ ॥

नीचे के मन्त्र से पहला समिधाधान करें।

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ १ ॥

नीचे के दो मन्त्रों से दूसरी आहुति दें

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ २ ॥

इस से और

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन अग्नये जातवेदसे, स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ ३ ॥

नीचे के मन्त्र से तीसरी—

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचायविष्ठ्य, स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम॥ ४ ॥ यजु० अ० ३ मं० १, २, ३।

नीचे के मन्त्र को एक एक बार बोल पाँच बार में घी की पाँच आहुति दें।

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्धवर्धय चास्मान् प्रजया

पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय, स्वाहा ॥

इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ १ ॥

अञ्जलि में जल लेकर—

ओं अदितेऽनुमन्यस्व—इस मन्त्र से पूर्व,

ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व—इससे पश्चिम,

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व—इससे उत्तर और

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ यजु० अ० ३० मं० १

इससे चारों ओर जल छोड़ें।

ओ३म् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम।

इससे उत्तर में हवनकुण्ड के अन्दर एक घी की आहुति दें।

ओ३म् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदन्न मम।

इस ऊपर के मन्त्र से दक्षिण में और नीचे के दो मन्त्रों से बीच में—

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा । इदम्प्रजापतये इदन्न मम ।

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय इदन्न मम

व्याहृति आहुति (केवल घी की) ।

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये—इदन्न मम ॥

ओं भुववायवे स्वाहा। इदं वायवे-इदन्न मम

ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय—इदन्न मम ।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम ।

अष्टाज्याहुति

ओं त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽअवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम॥ १॥

ओं स त्वन्नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्यां—इदन्न मम ॥ २ ॥ ऋ० मं० ४। सू० १। मं० ४। ५॥

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय त्वामवस्युरा चके स्वाहा॥ इदं वरुणाय-इदन्न मम॥ ३॥ ऋ० मं० १। सू० २५। मं० १९॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा । इदं वरुणाय-इदन्न मम ।४। ऋ०मं० १ । सू०२४ ।मं० ११ ॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः--इदन्न मम ॥ ५ ॥

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे-इदन्न मम ॥६॥ कात्या० २५--११ ॥

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि-मध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च-इदन्न मम ॥७॥

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञᳬ हिᳬ सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥ इदं जात-वेदोभ्यां-इदन्न मम ॥८॥ यजु० अ० ५ । मं० ३ ॥

विशेष शाकल्य की चार आहुतियाँ

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्ज्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ॥१॥

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम॥२॥

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयिपोषं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ॥३॥ ऋ० मं० ९। सू० ६६ । मं० १९ । २० । २१ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये--इदन्न मम ॥ ४ ॥
ऋ० मं० १० । सू० १२१ । मं० १० ॥

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा॥ इदमग्नये-इदन्न मम ॥१॥ ओं वायो व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा॥ इदं वायवे--इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ इदं सूर्याय—इदन्न मम॥ ३ ॥ ओं चन्द्र व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते

प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमह-मनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय व्रतपतये—इदन्न मम ॥ ५ ॥ मं० ब्रा० १। ६। ६—१३ ॥

इन पाँच मन्त्रों से पाँच आज्याहुति (केवल घी की) बालक के हाथ से दिलानी चाहिये। उसके पीछे इन मंत्रों से भी केवल घी की दिलावे

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये–इदन्न मम। ओं भुववार्यवे स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्न मम। ओं स्वरादित्याय स्वाहा॥ इदमादित्याय–इदन्न मम। ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदम-ग्निवाय्वादित्येभ्यः–इदन्न मम।

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं

स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते–इदन्न मम ॥ शतपथ का० १४ । अ० ६ । प्र० ४ । २४ ॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥

अब आचार्य यज्ञकुण्ड के उत्तर की ओर पूर्वाभिमुख बैठे और बलक आचार्य के सम्मुख पश्चिम मुख करके बैठे तत्पश्चात् आचार्य बालक की ओर देख

ओं आगन्त्रा समगन्महि प्रसुमर्त्यं युयोतन । अरिष्टाः संचरेमहि स्वस्ति चरतादयम् ॥ १ ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । १४

इस मन्त्र का जाप करे । फिर बालक

माणवकवाक्यम्—" ओं ब्रह्मचर्य-मागामुपमानयस्व ।" मं० ब्रा० १ । ६ । १६ ॥

आचार्योक्तिः "को * नामासि" ॥

बालकोक्तिः "एतन्नामास्मि" † ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । १ ॥

तत्पश्चात्

ओं आपो हि ष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ६ ॥

इन तीन मन्त्रों को पढ़ के बटुक की दक्षिण हस्ताञ्जलि शुद्धोदक से भरनी तत्पश्चात आचार्य्य अपनी हस्ताञ्जलि भर के:—

---

* तेरा नाम क्या है ऐसा पूछना ॥ † मेरा यह नाम है ।

ओं तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम। श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥ १ ॥ ऋ० मं० ५ । सू० ८२ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के आचार्य अपनी अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में छोड़ दे और बालक की हस्ताञ्जलि अङ्गुष्ठ सहित पकड़ केः—

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यांहस्तं गृह्णाम्यसौ* ॥ १ ॥ य० अ० ५। मं० २६ ॥

इस मन्त्र को पढ़े और बाल की हस्ताञ्जलि का जल नीचे पात्र में छुड़ा दे ।

दूसरी बार

ओं आपो हि ष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ तस्मा अरं गमाम

*बालक का संबोधनान्त नामोच्चारण यथा हे देवदत्त

वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ९ ॥

इन तीन मन्त्रों को पढ़ के बटुक की दक्षिण हस्ताञ्जलो शुद्धोदक से भरनी तत्पश्चात् आचार्य्य अपनी हस्ताञ्जली भर केः—

ओं तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्। श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥ १ ॥ ऋ० मं० ५ । सू० ८२ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के आचार्य अपनी अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में छोड़ के बालक की हस्ताञ्जलि अङ्गुष्ठ सहित पकड़ केः—

ओं सविता ते हस्तमग्रभीत्, असौ* ।१॥

इस मन्त्र से पात्र में छुड़वा दे पुनः इसी प्रकार तीसरी बार

ओं आपो हि ष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे

*असौ इस पद के स्थान में बालक का सम्बोधनान्त नामोच्चारण सर्वत्र करना चाहिये ॥

दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥१॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥२॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥३॥ ऋ० मं० १० सू० ९ ॥

इन तीन मन्त्रों को पढ़ के बटुक की दक्षिण हस्ताञ्जलि शुद्धोदक से भरनी तत्पश्चात् आचार्य अपनी हस्ताञ्जलि भर के:—

ओं तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥१॥ ऋ० मं ५ । सू० ८२ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के आचार्य अपनी अञ्जलि का जल बालक की अञ्जलि में छोड़ के बालक की हस्ताञ्जलि अङ्गुष्ठसहित पकड़ के:—

ओं अग्निराचार्यस्तव, असौ* । मं० ब्रा० १ । ६ । १५ ॥

---

*बालक का नाम सम्बोधन में

तीसरी बार बालक की अञ्जलि का जल छुड़वा के बाहर निकल सूर्य के सामने खड़े रह देख के आचार्यः—

ओं देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी त्वं गोपाय समावृतत् ॥१॥

इस एक और

ओं तच्चक्षुर्देवहितंपुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतᳬ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शत-मदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ २ ॥ य० ३६ । मं २४ ॥

इस दूसरे मन्त्र को पढ़ के बालक को सूर्यावलोकन करा, बालक सहित आचार्य सभामण्डप में आ यज्ञ-कुण्ड की उत्तर बाजू की ओर बैठ के:—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात्स

उ श्रेयान् भवति जायमानः । ओं सूर्यस्या-
व्रतमन्वावर्त्तस्व, *असौ।१।ऋ०मं०३।सू०८॥

इस मन्त्र को पढ़े और बालक आचार्य की प्रदक्षिणा करके आचार्य के सम्मुख बैठे पश्चात् आचार्य बालक के दक्षिण स्कन्धे पर अपने दक्षिण हाथ से स्पर्श और पश्चात् अपने हाथ से वस्त्र को बालक की नाभि पर से अनाच्छादित करके:—

ओं प्राणानां ग्रन्थिरसि मा विस्रसोऽन्तक इदं ते परिददामि अमुम् † ॥१॥ मं० ब्रा० १।६।२०॥

इस मन्त्र को बोलने के पश्चात्—

ओं अहुर इदं ते परिददामि अमुम् † ॥२॥

इस मन्त्र से उदर पर और:—

ओं कृशन इदं ते परिददामि अमुम् † ॥३॥

इस मन्त्र से हृदय—

---

*बालक का नाम सम्बोधन में †बालक का नाम द्वितीया में

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि असौ* ।४।

इस मन्त्र को बोल के दक्षिण स्कन्ध ओरः—

ओं देवाय त्वा सवित्रे परिददामि असौ* ।।५।। मं० ब्रा० १।६। २१—२४ ।।

इस मन्त्र को बोल के वाम हाथ से बाएँ स्कन्धा पर स्पर्श करके बालक के हृदय पर हाथ धरकेः—

ओं तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ।। ६ ।। ऋ० मं० ३ । सू० ८ ।।

इस मन्त्र को बोल के आचार्य सम्मुख रहकर बालक के दक्षिण हृदय पर अपना हाथ रखकेः—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्त-मनुचित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ।।१।। पार० कां० २ । कं० २ ।।

---

* बालक का नाम प्रथमा में बोला

आचार्य इस प्रतिज्ञामन्त्र को बोले अर्थात् "हे शिष्य बालक! तेरे हृदय को मैं अपने अधीन करता हूँ तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल सदा रहे और तू मेरी वाणी को एकाग्रमन हो प्रीति से सुनकर उसके अर्थ का सेवन किया कर और आजसे तेरी प्रतिज्ञा के अनुकूल बृहस्पति परमात्मा तुझ को मुझ से युक्त करे।" यह प्रतिज्ञा करे इसी प्रकार शिष्य भी आचार्य से प्रतिज्ञा करे "हे आचार्य! आपके हृदय को मैं अपनी उत्तम शिक्षा और विद्या की उन्नति में धारण करता हूँ मेरे चित्त के अनुकूल आपका चित्त सदा रहे आप मेरी वाणी को एकाग्र होके सुनिये और परमात्मा मेरे लिये आप को सदा नियुक्त रखे" इस प्रकार दोनों प्रतिज्ञा करके—

आचार्योक्तिः—

को नामाऽसि ॥ तेरा क्या नाम है?

बालकोक्तिः—**अहम्भोः एतन्नामाऽस्मि ॥**

मेरा अमुक नाम है ऐसा उत्तर देवे।

कस्य ब्रह्मचार्य्यसि ॥

आचार्यः—तू किसका ब्रह्मचारी है ?

भवतः ॥ पार० कां० २ । कं० २ ॥

बालकः—आपका।

आचार्य बालक की रक्षा के लिये:—

इन्द्रस्य ब्रह्मचार्य्यस्यग्निराचार्यस्तवा-हमाचार्यस्तव *असौ ॥ पार०कां०२।कं०२।

इस मन्त्र को बोले। तत्पश्चात्—

ओं कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य ब्रह्म-चार्यसि कस्त्वा कमुपनयते काय त्वा परि-ददामि ॥१॥ ओं प्रजापतये त्वा परिददामि।

* बालक का नाम

देवाय त्वा सवित्रे परिददामि । अद्भ्य-स्त्वौषधीभ्यः परिददामि । द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परि-ददामि । सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्य-रिष्ट्यै ॥ पार० कां० २ । कं० २ ॥

इन मन्त्रों को बोल बालक को शिक्षा करे कि प्राण आदि की विद्या के लिये यत्नवान् हो ॥

इत्युपनयनसंस्कार विधिः समाप्तः

अथ वेदारम्भसंस्कारविधिर्विधीयते

वेदारम्भ उसको कहते हैं जो गायत्री मन्त्र से

लेके साङ्गोपाङ्ग * चारों वेदों के अध्ययन करने के लिये नियम धारण करना ॥

समयः—जो दिन उपनयन संस्कार का है वही वेदारम्भ का है यदि यह संस्कार वेदारम्भ उसी दिन करे तो निम्नलिखित मन्त्र से आरम्भ करे ।

ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु । ओं यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा

---

* (अङ्ग) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष (उपाङ्ग) पूर्वमीमांसा, वैशेषिक न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त । (उपवेद) आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, और अर्थवेद अर्थात् शिल्पशास्त्र । (ब्राह्मण) ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ । (वेद) ऋक्, यजुः, साम और अथर्व इन सब को क्रम से पढ़े ।

असि । ओं एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु । ओं यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि । ओं एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥ १ ॥ पार० कां० २ । कं ४ ॥

इस मन्त्र से वेदी की अग्नि को इकट्ठा करके बालक कुण्ड की प्रदक्षिणा करे और नीचे के मन्त्रों से जल छिड़के ।

ओं अदितेऽनुमन्यस्व—इससे पूर्व

ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व—इससे पश्चिम

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व—इससे उत्तर और

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु

वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ यजु० अ० ३० मं०-१

इससे चारों ओर जल छोड़े।

बालक कुण्ड के दक्षिण की ओर उत्तराभिमुख खड़ा रहकर घृत में भिजो के एक समिधा हाथ में लेके इस नीचे मन्त्र को पढ़ कर छोड़े इसी प्रकार दूसरी फिर तीसरी अर्थात् तीन बार पढ़ कर तीन समिधा वेदिस्थ अग्नि के मध्य में छोड़ दे

ओं अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसऽएवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासꣳ स्वाहा ॥ १ ॥ पार० कां० २। कं० ४ ॥

ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु। ओं यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि। ओं एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु। ओं यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि। ओं एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥१॥ पार० कां० २। कं० ४॥

उक्त मन्त्र से वेदिस्थ अग्नि को इकट्ठा करके नीचे के चार मन्त्र से कुण्ड के सब ओर जल सिंचन करे

ओं अदितेऽनुमन्यस्व—इससे पूर्व की ओर

ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व—इससे पश्चिम की ओर

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व—इससे उत्तर की ओर

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः

पुनातुवाचस्पतिर्वाचंनः स्वदतु-इससे चारोंओर।

बालक वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठ के वेदी की अग्नि पर दोनों हाथों को थोड़ासा तपा के हाथ में जल लगाः—

ओं तनूपा अग्नेसि तन्वं मे पाहि॥१॥
ओं आयुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि ॥ २ ॥
ओं वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ॥३॥
ओं अग्ने यन्मे तन्वा ऊनन्तन्म आपृण ॥४॥
ओं मेधां मे देवः सविता आदधातु ॥५॥
ओं मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु ॥६॥
ओं मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर-स्रजौ ॥७॥ पार० कां० २ । कं० ४ ॥

जल स्पर्श करके इन सात मन्त्रों से सात बार किञ्चित् हथेली उष्ण कर मुख स्पर्श करना तत्पश्चात् बालक—

ओं वाङ् म आप्यायताम् ॥

इस मन्त्र से मुख,

ओं प्राणश्च म आप्यायताम् ॥

इस मन्त्र से नासिका द्वार,

ओं चक्षुश्च म आप्यायताम् ॥

इस मन्त्र से दोनों नेत्र,

ओं श्रोत्रश्च म आप्यायताम् ॥

इस मन्त्र से दोनों कान,

ओं यशो बलश्च म आप्यायताम्॥

इस मन्त्र से दोनों बाहुओं को स्पर्श करे

ओं मयि मेधां मयि प्रजां मय्य-

ग्निस्तेजो दधातु। मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु। मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु। यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम्। यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम्। यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम्॥

आश्व० अ० १। क० २१। सू० ४॥

इन मन्त्रों से बालक परमेश्वर का उपस्थान करके कुण्ड की उत्तर बाजू की ओर जाके, जानू को भूमि में टेक के, पूर्वाभिमुख बैठे और आचार्य बालक के सन्मुख पश्चिमाभिमुख बैठे—

बालकोक्तिः—अधीहि भोः सावित्रीं भो अनुब्रूहि॥

अर्थात् आचार्य से बालक कहे कि हे आचार्य ! प्रथम एक ओंकार पश्चात् तीन महाव्याहृति तत्पश्चात् सावित्री ये त्रिक अर्थात् तीनों मिलके परमात्मा के वाचक मन्त्र को मुझे उपदेश कीजिये तत्पश्चात् आचार्य एक वस्त्र अपने और बालक के कन्धे पर रख के अपने हाथ से बालक के दोनों हाथ की अंगुलियों को पकड़ के नीचे लिखे प्रमाणे बालक को तीन बार करके गायत्री मन्त्रोपदेश करे ॥

प्रथम वार

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम् ।

इतना टुकड़ा एक एक पद का शुद्ध उच्चारण बालक से कराके दूसरी वार—

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम् । भर्गो देवस्य धीमहि ।

एक एक पद से यथावत् धीरे धीरे उच्चारण करवा के, तीसरी वार—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥

धीरे धीरे इस मन्त्र को बुलवा के संक्षेप से इसका अर्थ भी नीचे लिखे प्रमाणे आचार्य सुनावे—

अर्थः—(ओ३म्) यह परमेश्वर का नाम है जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं (भूः) जो प्राण का भी प्राण (भुवः) सब दुःखों से छुड़ानेहारा (स्वः) स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुख की प्राप्ति करानेहारा है उस (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाले सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक समग्र ऐश्वर्य के दाता (देवस्य) कामना करने योग्य सर्वत्र विजय करानेहारे परमात्मा का जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करनेहारा पवित्र शुद्ध स्वरूप है (तत्) उसको हम लोग (धीमहि) धारण

करें (यः) यह जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे इसी प्रयोजन के लिये इस जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना करना और इससे भिन्न और किसी को उपास्य इष्टदेव उसके तुल्य वा उससे अधिक नहीं मानना चाहिये इस प्रकार अर्थ सुनाये, पश्चात्—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि । मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ १ ॥ पार० कां० २ । कं० २ ॥

इस मन्त्र से बालक और आचार्य पूर्ववत् दृढ़ प्रतिज्ञा करके—

ओं इयं दुरुक्तं परिबाधमानावर्णं पवित्रं पुनती म आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम् ॥ १ ॥ मं० ब्रा० १ । १ । २७ ॥ पार० कां० २ । कं० २ ॥

इस मन्त्र से आचार्य सुन्दर चिकनी प्रथम बना रक्खी हुई मेखला * को बालक के कटि में बाँध के—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो

* ब्राह्मण की मुञ्ज वा दर्भ की, क्षत्रिय को धनुषसंज्ञक तृण वा बल्कल की और वैश्य को ऊन वा शण की मेखला होनी चाहिये।

मनसा देवयन्तः ॥ १ ॥ ऋ० मं० ३। सू० ८। मंत्र ४ ॥

इस मन्त्र को बोल के दो शुद्ध कौपीन, दो अंगोछे और एक उत्तरीय और दो कटिवस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे और उनमें से एक कौपीन, एक कटिवस्त्र और एक उपन्ना बालक को आचार्य धारण करावे तत्पश्चात् आचार्य दण्ड हाथ में लेके सामने खड़ा रहे और बालक भी आचार्य के सामने हाथ जोड़—

---

† ब्राह्मण के बालक को खड़ा रख के भूमि से ललाट के केशों तक पलाश वा विल्व वृक्ष का, क्षत्रिय को वट वा खदिर का ललाट भ्रू तक, वैश्य को पीलू अथवा गूलर वृक्ष का नासिक के अग्रभाग तक दण्ड चिकने सूधे हों, अग्नि में जले, टेढ़े, कीड़ों के खाये हुए न हों और एक एक मृगचर्म उनके बैठने के लिये एक एक जलपात्र, एक एक उपपात्र और एक एक आचमनीय सब ब्रह्मचारियों को देना चाहिये।

ओं यो मे दंडः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम् । तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥१॥ पार० कां० २। कं० २॥

इस मन्त्र को बोल के बालक आचार्य के हाथ से दण्ड ले लेवे, तत्पश्चात् पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रम का साधारण उपदेश करे—

ब्रह्मचार्यसि असौ * ॥१॥ अपोऽशान ॥२॥ कर्म कुरु ॥३॥ दिवा मा स्वाप्सीः ॥ ४ ॥ आचार्याधीनो वेदमधीष्व ॥५॥ द्वादश वर्षाणि प्रतिवेदं ब्रह्मचर्यं गृहाण वा ब्रह्मचर्यं चर ॥६॥

---

* असौ इस पद के स्थान में ब्रह्मचारी का नाम सर्वत्र उच्चारण करे।

आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात् ॥ ७ ॥ क्रोधानृते वर्जय ॥ ८ ॥ मैथुनं वर्जय ॥ ९ ॥ उपरि शय्यां वर्जय ॥ १० ॥ कौशीलवगन्धाञ्जनानि वर्जय ॥ ११ ॥ अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं निन्दां लोभमोहभयशोकान् वर्जय ॥ १२ ॥ प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्तधावनस्नानसन्ध्योपासनेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनायोगाभ्यासान्नित्यमाचर ॥ १३ ॥ क्षुरकृत्यं वर्जय ॥ १४ ॥ मांसरूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय ॥ १५ ॥ गवाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय ॥ १६ ॥ अन्तर्ग्राम-निवासोपानच्छत्रधारणं वर्जय ॥ १७ ॥

अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेताः सततं भव ॥ १८ ॥ तैलाभ्यङ्गमर्दनात्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व ॥ १९ ॥ नित्यं युक्ताहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव ॥ २० ॥ सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव ॥ २१ ॥ मेखलादण्डधारणभैक्ष्यचर्यसमिदाधानोदकस्पर्शनाचार्यप्रियाचरणप्रातःसायमभिवादनविद्यासंचयजितेन्द्रियत्वादीन्येते ते नित्यधर्माः॥२२

अर्थः—तू आज से ब्रह्मचारी है॥ १ ॥ नित्य सन्ध्योपासन, भोजन के पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया कर ॥ २ ॥ दुष्ट कर्मों को छोड़ धर्म किया कर ॥ ३ ॥ दिन में शयन कभी मत कर ॥४॥ आचार्य

के आधीन रह के नित्य साङ्गो ...वेद पढ़ने में पुरुषार्थ किया कर ॥ ५ ॥ एक एक ...ङ्गोपाङ्ग वेद के लिये बारह बारह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य अर्थात् ४८ वर्ष तक वा जबतक साङ्गोपाङ्ग चारों वेद पूरे होवें तबतक अखण्डित ब्रह्मचर्य कर ॥ ६ ॥ आचार्य के आधीन धर्माचरण में रहा कर, परन्तु यदि आचार्य अधर्माचरण वा अधर्म करने का उपदेश करे उसको तू कभी मत मान और उसका आचरण मत कर ॥७॥ क्रोध और मिथ्याभाषण करना छोड़ दे ॥ ८ ॥ आठ* प्रकार के

* स्त्री का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम, स्त्री का ध्यान, काम और भोग भाव से स्त्री ध्यान की कथा यानी उनका काम-भाव से वर्णन करना या किताबें सुनना, स्त्री का काम-भाव से छूना, और स्त्री क्रीड़ा अर्थात् ऐसे ही भावों से उनके साथ खेलना और उनको पकड़ना या लिपटना और उनके साथ अकेले में रहना और दिल्लगी मज़ाक़ करना, चूमना

मैथुन को छोड़ देना ॥ ६ ॥ भूमि में शयन करना, पलंग आदि पर कभी न सोना ॥ १० ॥ कौशीलव अर्थात् गाना बजाना तथा नृत्य आदि निन्दित कर्म, गन्ध और अंजन का सेवन मत कर ॥ ११ ॥ अति स्नान, अति भोजन, अधिक निद्रा, अधिक जागरण, निन्दा, लोभ, मोह, भय, शोक का ग्रहण कभी मत कर ॥ १२ ॥ रात्रि के चौथे पहर में जाग आवश्यक शौचादि, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासन, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना, योगाभ्यास का आचरण नित्य किया कर ॥१३॥ क्षौर मत करा ॥१४॥ मांस, रूखा, शुष्कअन्न मत खावे और मद्यादि मत पीवे ॥१५॥ बैल घोड़ा हाथी ऊँट आदि की सवारी मत कर ॥१६॥

और भोगना। दर्शनः—स्त्री या बालक को काम (बुरी) दृष्टि से देखना, बुरे नाटक या वायस्कोप (सिनेमा) देखना, बुरी तस्वीरें देखना, बुरी किताबें पढ़ना। यह आठ प्रकार का मैथुन कहलाता है जो इनको छोड़ देता है वही 'ब्रह्मचारी' होता है ॥

गाँव में निवास और जूता और छत्र को धारण मत कर ॥ १७ ॥ लघुशंका के बिना उपस्थ इन्द्रिय के स्पर्श से वीर्य स्खलन कभी न करके वीर्य को शरीर में रख के निरन्तर ऊर्ध्वरेता अर्थात् नीचे वीर्य को मत गिरने दे इस प्रकार यत्न से वर्त्ता कर ॥ १८ ॥ तैलादि से अंगमर्दन, उबटना, अति खट्टा अमली आदि, अति तीखा लाल मिर्च आदि, कसेला हरड़े आदि, क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर ॥ १९ ॥ नित्य युक्ति से आहार-विहार करके विद्या-ग्रहण में यत्नशील हो ॥ २० ॥ सुशील, थोड़े बोलनेवाला, सभा में बैठने योग्य गुण ग्रहण कर ॥ २१ ॥ मेखला और दण्ड का धारण, भिक्षाचरण, अग्निहोत्र, स्नान, सन्ध्योपासन, आचार्य का प्रियाचरण, प्रातः सायं आचार्य को नमस्कार करना ये तेरे नित्य करने के और जो निषेध किये वे नित्य न करने के कर्म हैं ॥ २२ ॥

जब यह उपदेश पिता कर चुके तब बालक पिता को नमस्कार कर, हाथ जोड़ के कहे कि जैसा आपने उपदेश किया वैसा ही करूँगा। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके, कुण्ड के पश्चिम भाग में खड़ा रहके माता, पिता, बहिन, भाई, मामा मौसी, चाची आदि से लेके जो भिक्षा देने में नकार न करें उन से भिक्षा * माँगे और जितनी भिक्षा मिले वह आचार्य के आगे धर देनी। तत्पश्चात आचार्य उसमें से कुछ थोड़ासा अन्न लेके वह सब भिक्षा बालक को दे देवे और वह बालक उस भिक्षा को अपने भोजन के लिए रख छोड़े। तत्पश्चात् बालक को शुभासन पर बैठा के निम्नलिखित वामदेव्यगान को करे।

---

* ब्राह्मण का बालक यदि पुरुष से भिक्षामांगे तो "भवान् भिक्षां ददातु" और जो स्त्री से मांगे तो "भवती भिक्षां ददातु", और क्षत्रिय का बालक "भिक्षां भवान् ददातु" और स्त्री से "भिक्षां भवती ददातु" वैश्य का बालक "भिक्षां ददातु भवान्" और "भिक्षां ददातु भवती" ऐसा वाक्य बोले॥

वामदेव्यगान

ओं भूर्भुवः स्वः। कयां नश्चित्र
आभुवदूती सदा वृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥१॥ ओं
भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो म-
दानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥
ओं भूर्भुवः स्वः। अभीषुणः स-
खीनामविता जरितृणाम्। श-
तम्भवास्यूतये ॥ ३ ॥

महावामदेव्यम्

काऽ५यो । नश्चाँ३ इत्राँ३ आंभुवात् । ऊं । ती संदांवृधः संखा । औ ३ होहाई । कंया २३ शंचाई । ष्ठयौहो ३ हुम्मा २ । वा२र्तौ३ऽ५हाइ ॥(१)॥ काऽ५स्त्वा।सत्यो ३मा३दानाम् मां । हिष्ठो मात्सादन्धं । सा । औ ३होहाइ । दृढा२३ चिंदा । रुजौहो ३ । हुम्मा२ । वाऽ३सो

३ऽ५हाँयि ॥ (२) ॥ आँऽ५भी
षुणाँ३: साँ३ खीनाँम् । आं ।
विताँ जंरायितॄँ। णांम् । औ२३
होँ हाँयि । शंता२३म्भंवा ।
सिँयोहाँ३ । हुंम्मा २ । तांऽ२
यो३ऽ५हाँयि ॥ (३) ॥ साम०
उत्तरार्चिके । अध्याये १ । खं०
३ । मं० १ । २ ३ ॥

तत्पश्चात् बालक पूर्व रक्खी हुई भिक्षा का भोजन करे पश्चात् सायंकाल तक विश्राम और निम्न सन्ध्योपासना आचार्य बालक के हाथ से करावे।

❁ ओ३म् ❁

सन्ध्या

—:०:—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्व्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्

ऊपर के मन्त्र से शिखा बाँधे।

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः॥

ओ३म् वाक् वाक्। ओ३म् प्राणः प्राणः। ओ३म् चक्षुः चक्षुः। ओ३म्

श्रोत्रम् श्रोत्रम् । ओ३म् नाभिः । ओ३म् हृदयम् । ओ३म् कण्ठः । ओ३म् शिरः । ओ३म् बाहुभ्याम् यशोबलम् । ओ३म् करतलकरपृष्ठे ॥

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि । ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठे । ओ३म् महः पुनातु हृदये । ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम् । ओ३म् तपः पुनातु पादयोः । ओ३म् सत्यं पुनातु पुनः शिरसि । ओ३म् खम्ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

ओ३म् भूः । ओ३म् भुवः । ओ३म् स्वः । ओ३म् महः । ओ३म् जनः । ओ३म् तपः । ओ३म् सत्यम् ॥

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत । ततोरात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥

ओ३म् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥

ओ३म् सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्व्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥

ओ३म् प्राचीदिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ १ ॥

ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।

योऽ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ २ ॥

ओ३म् प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ३ ॥

ओ३म् उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ४ ॥

ओ३म् ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥५॥

ओ३म् ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥६॥

ओ३म् उद्वयन्तमसस्परिस्वः पश्यन्त

उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १ ॥

ओ३म् उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥२॥

ओ३म् चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आ प्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ३ ॥

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं

प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥४ ॥

ओ३म् शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयो रभिस्रवन्तु नः ॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्व्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

हे ईश्वर ! दयानिधे !! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादि कर्मणा धर्मार्थ काम-मोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः ।

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयो भवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

पश्चात् ब्रह्मचारी सहित आचार्य कुण्ड के पश्चिम भाग में आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे और निम्नलिखित स्थालीपाक भात बना उसमें घी डाल पात्र में रख-

स्थालीपाक

नीचे लिखे विधि से भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू मोहनभोग आदि सब उत्तम पदार्थ बनावे। इसका प्रमाण:—

ओ३म् देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण वसोः पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥

इस मन्त्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्य को यथावत् शुद्ध अवश्य कर लेना चाहिये अर्थात सबको यथावत शोध छान देख भाल सुधार कर करें, इन द्रव्यों को यथायोग्य मिला के पाक करना जैसे कि सेर भर मिश्री के मोहनभोग में रत्ती भर कस्तूरी, मासे भर केशर, दो मासे जायफल, जावित्री सेर भर मीठा, सब डाल कर मोहनभोग बनाना इसी प्रकार अन्य-मीठा भात, खीर, खिचड़ी, मोदक आदि होम के लिये बनावें। चरू अर्थात होम के लिये पाक बनाने की विधि (ओं अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि) अर्थात् जितनी आहुति देनी हो प्रत्येक आहुति के लिये चार चार मूठी चावल लेके (ओं अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि) अर्थात अच्छे प्रकार जल से धोके पाकस्थाली में डाल अग्नि से पका लेवे।

अग्नि शान्ति हो तो यह नीचे का मन्त्र बोलकर स्थापनादि करे अन्यथा नहीं केवल समिधाधान करे

ओं भूर्भुवः स्वः ॥ गोभिल गृ० प्र० १। ख० १ सू० ११ ॥

नीचे के मन्त्र से अग्नि या जलते कपूर को कुण्ड में रख

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ यजुर्वेद अ० ३। मं० ५। नीचे के मन्त्र से अग्नि रखी हो तो पंखा करे—

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳ सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत यजुर्वेद अध्याय १५। मन्त्र ५४ ॥

नीचे के मन्त्र से पहला समिधाधान करे।

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय, स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ १ ॥

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥ इदमग्नये-
इदन्न मम ॥ २ ॥ इससे और

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन।
अग्नये जातवेदसे स्वाहा इदमग्नये जातवेदसे-
इदन्न मम ॥ ३ ॥

इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि।
बृहच्छोचायविष्ठ्य स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे-
इदन्न मम ॥ ४ ॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्ते नेध्यस्व
वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म-
वर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये
जातवेदसे-इदन्न मम ॥ १ ॥

अञ्जलि में जल लेकर—

ओं अदितेऽनुमन्यस्व—इस मन्त्र से पूर्व,

ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व—इससे पश्चिम,

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व—इससे उत्तर, और

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥ यजु० अ० ३० मं० १

इससे चारों ओर जल छोड़ें। "आघारावाज्याहुति"

ओ३म् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम

ओ३म् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदन्न मम॥

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम।

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय-इदन्न
मम ।

व्याहृति आहुति

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्न मम ।
ओं भुववर्यिवे स्वाहा ॥ इदं वायवे-इदन्न मम
ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय
इदन्न मम ।
ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम ।

ब्रह्मचारी खड़ा हो के इस नीचे के मन्त्र से तीन समिधा की आहुति देवे ।

ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु । ओं यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि। ओं एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु। ओं यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि । ओं एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥ पार० कां० २ । कं० ४ ॥

तत्पश्चात् बालक बैठ के यज्ञकुण्ड की अग्नि से अपना हाथ तपा नीचे के मन्त्रों से पूर्ववत् मुख का स्पर्श कर के अङ्गस्पर्श करे ।

अंग स्पर्श मन्त्राः।

ओं वाङ्म ऽआस्येऽस्तु ॥१॥
ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥२॥
ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥३॥
ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥४॥
ओं वाह्वोर्मे बलमस्तु ॥५॥
ओं ऊर्वोर्मेऽओजोऽस्तु ॥६॥
ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥७॥ पारस्कर गृ० कां० ३। सू० २५॥

तत्पश्चात् स्थालीपाक बनाये हुए भात को बालक आचार्य को होम और भोजन के लिये देवे पुनः आचार्य उस भात में से आहुति के अनुमान भात को स्थाली में ले के उसमें घी मिला—

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयाशिषꣳ स्वाहा ॥ इदं सदसस्पतये इदन्न मम ॥ १ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ इदं सवित्रे-इदं न मम ॥ २ ॥

ओं ऋषिभ्यः स्वाहा ॥ इदं ऋषिभ्यः इदन्न मम ॥ ३ ॥

इन तीन मन्त्रों से तीन और नीचे के मन्त्र से चौथी आहुति देवे ।

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते

सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नयेस्विष्टकृते-इदन्न मम ॥ ४ ॥

व्याहृति आहुति

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्न मम ।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे-इदन्न मम ।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय-इदन्न मम ।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः-इदन्न मम ।

ओं त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽअवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत्

स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्-इदन्न मम ॥१॥

ओं स त्वन्नोऽग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा इदमग्नीवरुणाभ्यां-इदन्न मम ॥ २ ॥

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके स्वाहा ॥ इदं वरुणाय-इदन्न मम ॥ ३ ॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा । इदं वरुणाय-इदन्न मम ।४। ऋ०मं० १ । सू०२४ ।मं०११॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः--इदन्न मम ॥ ५ ॥

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषज ॐ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे- इदन्न मम ॥६॥ कात्या० २५--११॥

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमा दित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च-इदन्न मम ॥७॥

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञᳬं हिᳬंसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेद-सौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा॥ इदं जात वेदोभ्यां-इदन्न मम ॥८॥ यजु० अ० ५। मं० ३।

तत्पश्चात् इन उपरोक्त बारह मन्त्रों से आज्याहुति देके ब्रह्मचारी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के पृष्ठ १०३, १०४ और १०५ में लिखित वामदेव्यगान आचार्य के साथ करके:—

अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं भो भवन्तमभिवा-दये ॥

ऐसा वाक्य बोलकर आचार्य का वन्दन करे और आचार्य—

आयुष्मान् विद्यावान् भव सौम्य ॥

ऐसा आशीर्वाद देके पश्चात् होम से बचे हुए हविष्य अन्न और दूसरे भी सुन्दर मिष्ठान्न का भोजन आचार्य के साथ अर्थात् पृथक् २ बैठ के करें तत्पश्चात् हस्त मुख प्रक्षालन करके संस्कार में निमन्त्रण से जो आये हों उनको यथायोग्य भोजन करा तत्पश्चात् स्त्रियों को स्त्री और पुरुषों को पुरुष प्रीतिपूर्वक विदा करें और सब जन बालक को निम्नलिखितः—

हे बालक ! त्वमीश्वरकृपया विद्वान् शरीरात्मबलयुक्तः कुशली वीर्यवानरोगः सर्वा विद्या अधीत्याऽस्मान् दिदृक्षुः सन्नागम्याः ॥

ऐसा आशीर्वाद दे के अपने अपने घर को चले जायें तत्पश्चात् ब्रह्मचारी ३ (तीन) दिन तक भूमि में शयन प्रातःसायं इस मंत्र से समिधा होम

ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु । ओं यथ[illegible] सुश्रवः सुश्रवा असि । ओं

एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु। ओं यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि। ओं एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥ १ ॥ पार० कां० २ । कं० ४ ॥

और इन मन्त्रों से मुख आदि अङ्गस्पर्श आचार्य करावे

ओं वाङ्मऽआस्येऽस्तु ॥

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥

ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ॥

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥ पारस्कर गृ० कां० १ । कं० ३ । सू० २५ ॥